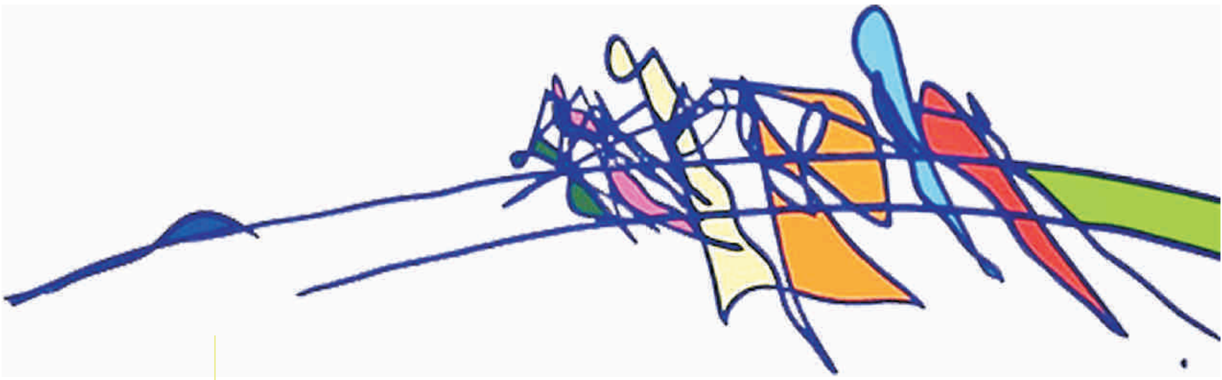

विचार निर्विचार और भाव

विचार से मुक्त होना है, निर्विचार को लाना है, ताकि भाव आ सके

प्रश्न : भक्त भाव से भरा होता है; लेकिन भाव और विचार में हम कब और कैसे सही–सही फर्क कर सकते हैं?

विचार एक आंशिक घटना है, जो तुम्हारे मस्तिष्क में चलती है। भाव एक सर्वांग घटना है, जो तुम्हारे पूरे अस्तित्व में गूंज जाती है; यही फर्क है। विचार तो तुम्हारी खोपड़ी में चलता है। वह तुम्हारे समग्र व्यक्तित्व को ओत-प्रोत नहीं करता। तुम्हारे मन में एक विचार चल रहा है–भगवान का, तो तुम्हारा रोआं-रोआं उस भगवान के विचार से स्नान नहीं कर पाएगा। विचार मन में चलता रहेगा। हृदय की धड़कन में नहीं गूंजेगा। तुम विचार भगवान का करते रहोगे, लेकिन तुम्हारे पैरों को उसकी कोई खबर न मिलेगी। तुम्हारे हड्डी, मांस, मज्जा को उसकी कोई खबर न मिलेगी। वह विचार ऊपर-ऊपर चला जाएगा। वह ऐसे ही होगा जैसे सागर पर तुम एक कागज की नाव तैरा

चित्रकला : वानगाग

दो। वह ऊपर-ऊपर लहरों पर डगमगाती रहेगी। सागर की गहराइयों को पता नहीं चलेगा, कि ऊपर कोई कागज की नाव भी डांवाडोल हो रही है।

विचार कागज की नावें हैं। वे तुम्हारी मस्तिष्क की सतह पर डोलते रहते हैं। वहीं आते हैं, वहीं से तिरोहित हो जाते हैं। तुम्हारे भीतर तुम्हारी गहराई को उनकी कोई भी खबर नहीं मिल पाती। वे आये, इसका भी पता नहीं चलता; कब चले गये, इसका भी पता नहीं चलता।

भाव सर्वांग अवस्था है। जब तुम परमात्मा के भाव से भरते हो तो तुम्हारा मस्तिष्क ही नहीं भरता; मस्तिष्क भरता ही है, तुम्हारा रोआं-रोआं, तन-प्राण सब भर जाता है।

परमात्मा के भाव से भरे हुए व्यक्ति को कहना न पड़ेगा कि वह परमात्मा का विचार कर रहा है। तुम देखोगे, तुम पाओगे कि वह परमात्मा को जी रहा है।

विचार और जीवन में जितना फर्क है, उतना ही फर्क विचार और भाव में है। भाव यानी सर्वांगीणता, भाव यानी समग्रता।

जब तुम कभी किसी के प्रेम में पड़ जाते हो, तब खोपड़ी में ही थोड़ी प्रेम रहता है! वह तुम्हारे हृदय में भी धड़कने लगता है। तुम्हारे रोएं-रोएं में भी पुलक आ जाती है। तुम्हारी चाल बदल जाती है। कल भी तुम चलते थे। ऐसे चलते थे, जैसे पैरों

है। प्रेम तो बड़ी फीकी ध्वनि है प्रार्थना की, बड़ी फीकी! जैसे हजार-हजार पर्दों के पार से तुमने परमात्मा को देखा हो। बस एक झलक, एक छाया सरक गई हो, बस, ऐसा प्रेम है। लेकिन फिर भी प्रेम बड़ा महत्वपूर्ण है। क्योंकि जिनके जीवन में प्रार्थना नहीं है, परमात्मा नहीं, उनके जीवन में तो प्रेम बड़ा महत्वपूर्ण है। क्योंकि जिनके जीवन में प्रार्थना नहीं, परमात्मा नहीं, उनके जीवन में तो

विचार कागज की नावें हैं। वे तुम्हारी मस्तिष्क की सतह पर डोलते रहते हैं। वहीं आते हैं, वहीं से तिरोहित हो जाते हैं। तुम्हारे भीतर तुम्हारी गहराई को उनकी कोई भी खबर नहीं मिल पाती। वे आये, इसका भी पता नहीं चलता; कब चले गये, इसका भी पता नहीं चलता

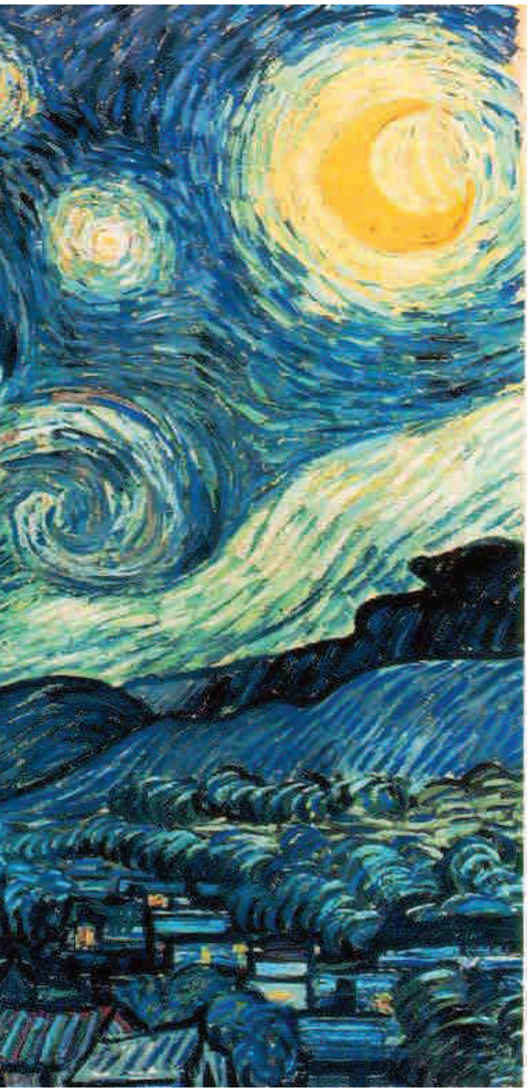

को घसिटते हो। आज भी तुम चलते हो, पैर वही हैं, आकाश वही है, कुछ भी बदला नहीं; लेकिन आज तुम्हारे पैरों में एक नाच है। तुम किसी के प्रेम में पड़ गये हो।

हॉलैंड में एक बहुत बड़ा चित्रकार हुआ, विन्सेंट वानगाग। इस सदी में जैसी वानगाग की ख्याति है, वैसी किसी दूसरे चित्रकार की नहीं है। वानगाग कुरूप था। और कोई स्त्री कभी उसके प्रेम में न पड़ी। कुरूप ही नहीं था, विकर्षक था, रिपल्सिव था; कि उसके पास जाकर दूर हटने का मन पैदा होने लगे, कि दोबारा इससे मिलना न हो।

लेकिन बड़ा अद्‌भुत चित्रकार था। सौंदर्य का बड़ा पारखी था। शरीर बड़ा कुरूप था। किसी तरह जी रहा था, काम करता था। एक चित्रशाला में रोज काम करने जाता था। काम भी कर देता था, चित्र भी बना देता था, चित्र बिक भी जाते थे। लेकिन चलता था घसिटता हुआ! जिसके जीवन में प्रेम की वीणा न बजी...।

प्रार्थना तो बहुत दूर है, परमात्मा तो बहुत दूर `। बस एक झलक, एक छाया सरक गई हो, बस, ऐसा प्रेम है। लेकिन फिर भी प्रेम बड़ा महत्वपूर्ण

प्रेम ही तो एकमात्र घड़ी है, जब वे समग्रता को जानते हैं। अन्यथा सभी चीजें खण्ड-खण्ड हैं।

वह घसिटता हुआ चलता था, जैसे पैर अलग चलते, हाथ अलग चलते, सिर अलग चलता। जैसे कोई चीज जोड़ने वाली न थी भीतर। जैसे भीतर कोई केंद्र न था। जैसे वह कोई एक एकता न था। यंत्र सब ढीला हो गया था और अस्थिपंजर—किसी तरह लटके चल रहे थे।

एक दिन अचानक चित्रशाला के मालिक ने देखा, वानगाग की चाल बदल गई है। उसमें थोड़ी गति है; और गति ही नहीं है, एक पुलक है! न केवल पुलक है बल्कि उसके चेहरे पर एक ताजगी है। जैसे उसने आज कई वर्षों के बाद स्नान किया है। स्नान तो वह रोज करता था, लेकिन आज कोई भीतरी स्नान हो गया है, एक नाच है।

उसके मालिक ने कहा, 'वानगाग! तुम्हें वर्षों से देख रहा हूं। तुमसे ज्यादा उदास, हताश, हारा हुआ आदमी नहीं देखा। आज क्या हो गया है? सीढ़ियां चढ़ते वक्त तुम सीटी बजा रहे थे। क्या मामला है? क्या किसी के प्रेम में पड़ गये?'

वानगाग ने कहा, 'हां, एक स्त्री ने मेरी तरफ मुस्कुरा कर देखा है।'

एक स्त्री जब तुम्हारी तरफ मुस्कुरा कर देख दे, तो इतनी बड़ी घटना घट जाती है; और जब परमात्मा तुम्हारी तरफ मुस्कुरा कर देखेगा हजार-हजार रूपों में—वृक्षों से, चांद-तारों से, झरनों से, पहाड़ों से, सब तरफ से तुम पर झुक आयेगा; जैसे आषाढ़ में मेघ घिर गए हों, ऐसा सब तरफ से झुक आयेगा और वर्षा करने लगेगा प्रेम की, तब क्या तुम्हारी खोपड़ी में ही ऐसा भाव उठेगा, कि परमात्मा देख रहा है?

नहीं, तब तुम नाच उठोगे। मीरा कहती है, 'पद घुंघरू बांध मीरा नाची'। उस घड़ी में सोचने से काम न चलेगा; नाचना भी कम पड़ जाएगा। नाचने का अर्थ ही यह है कि तुम्हारी समग्रता ओत-प्रोत हो गई, तुम्हारा रोआं-रोआं सम्मिलित हो गया, तुम्हारी धड़कन-धड़कन डूब गई, तुम्हारी श्वास-श्वास ने स्पर्श किया उसका।

भाव-दशा का अर्थ है अखण्ड, पूरे तुम उसमें हो। इसलिए प्रेम विचार नहीं है, प्रेम भाव है। प्रार्थना भी विचार नहीं है, प्रार्थना भाव है। ध्यान भी विचार नहीं है, ध्यान भाव है।

और भाव को अगर तुम ठीक से समझ लो, तो वह विचार से बिलकुल उलटा है, क्योंकि उसका गुणधर्म निर्विचार का है। जितना ही भाव तुम्हें पूरा पकड़ लेता है, उतने ही विचार शांत हो जाते हैं, तरंगें खो जाती हैं। तुम इतनी गहरी अनुभूति से भरे होते हो, कि विचार करने की सुविधा कहां? जगह कहां? जरूरत कहां?

प्रेम का विचार तो वही करता है, जिसने प्रेम का भाव नहीं जाना। भोजन का विचार वही करता है, जो भूखा है और जिसने भोजन नहीं जाना। भरा-पेट आदमी कहीं भोजन का विचार करता है! भोजन से मिल जाती है तृप्ति, विचार खो जाते हैं। भूखा विचार करता है भोजन का। भूखा भोजन ही भोजन का विचार करता है, और कोई विचार आते ही नहीं।

तो परमात्मा का विचार तो तभी तक आएगा, जब तक परमात्मा की भूख ही है। अभी तृप्ति नहीं हुई। प्यास ही है, कंठ पर जल की धारा नहीं गिरी। अभी मिलन नहीं हुआ। एक हलकी सी फुहार भी नहीं पड़ी। भाव है तुम्हारा पूरा-पूरा

गिरी। अभी मिलन नहीं हुआ। एक हलकी सी फुहार भी नहीं पड़ी। भाव है तुम्हारा पूरा-पूरा संयुक्त किसी अवस्था में हो जाना। इसलिए सारा जोर समस्त साधनाओं का एक ही है, कि तुम विचार से भाव की तरफ हटो।

और सारी संस्कृति, सारी सभ्यता, सारा समाज, सारी शिक्षा एक ही बात की है, कि तुम भाव से बचो और विचार में जीयो। स्कूल, कालेज, यूनिवर्सिटी विचार सिखाती है, भाव नहीं—'सोचो!' और सोचने का अर्थ क्या होता है? सोचने का अर्थ होता है, जीने से बचना। जितना तुम सोचोगे, उतना जीने से बचते जाओगे। तुम सोचते ही रहोगे। आखिर में तुम पाओगे, खोपड़ी अपने भीतर ही सब कर लेती है। शरीर की कोई जरूरत ही नहीं रह गई।

अभी पश्चिम में कुछ प्रयोग हुए हैं। मस्तिष्क की सर्जरी के प्रयोगों से एक बात अनुभव में आई

विचार का खो जाना पर्याप्त नहीं है। यही भक्तों में और ध्यानियों में फर्क है। ध्यानी कहता है, विचार खो गया, सब हो गया। भक्त कहता है, विचार खो गया, यह तो केवल प्राथमिक चरण है। अभी भाव कहां जन्मा है?

है कि मस्तिष्क को शरीर से बाहर निकाला जा सकता है और अलग शरीर के रखा जा सकता है यंत्रों के सहारे; तो भी मस्तिष्क सोचता ही चला जाता है। तुम्हारी कोई जरूरत ही नहीं है मस्तिष्क को सोचने के लिए। मस्तिष्क को घंटों बाहर रखकर परीक्षण किए गए हैं। शरीर से बिलकुल बाहर निकाल लिया है। अब उसको यंत्रों के सहारे चलाते हैं। यांत्रिक फेफड़ा खून देता है। यांत्रिक फेफड़े से ऑक्सीजन मिलती है और मस्तिष्क सोचना जारी रखता है।

उस आदमी को पता भी नहीं होगा, कि कोई फर्क पड़ गया है। वह जो सोच रहा था—अगर वह पैसे का पागल था तो वह पैसे का सोच-विचार जारी रखेगा, हिसाब-किताब लगाता रहेगा भीतर। धन, रुपए गिनता रहेगा।

अगर वह आदमी राजनीतिज्ञ था तो पद की आकांक्षा में लगा रहेगा। मिलता रहेगा अपने वोटर्स से। चुनाव का दौरा करता रहेगा। और शरीर के बाहर पड़ा है मस्तिष्क!

अगर वह कामी था, तो कामवासना से भरा रहेगा। अब कामवासना के तृप्त करने का कोई उपाय भी नहीं, क्योंकि शरीर से अलग है मस्तिष्क।

अगर वह किसी मंत्र का पागल था, कि 'ओमृ, ओमृ, ओमृ, ओमृ' जपना है, तो वह जपता रहेगा।

विचार अकेले मस्तिष्क से चल सकते हैं, उनके लिए तुम्हारे पूरे होने की जरूरत नहीं है। इसलिए जितना विचारक विचार में डूबता चला जाता है, उतना ही उसका जीवन संकीर्ण होता चला जाता है, छोटा होता चला जाता है।

पश्चिम में एक विचारक बहुत विचार करने के बाद परेशान होकर इस नतीजे पर पहुंचा, कि अगर किसी तरह विचार से मुक्ति हो जाए तो ही शांति मिल सकती है। तो उसने एक छोटा-सा प्रयोग किया है, वह बड़ा कीमती प्रयोग है। शायद तुम्हें भी काम का हो जाए। फिर तो वह बहुत प्रसिद्ध हो गया। फिर तो उसने एक छोटी-सी किताब लिखी अपने प्रयोग के बाबत।

उसने एक प्रयोग किया, कि विचार से बहुत परेशान होने के कारण मानसिक चिकित्सा, ' हल न पाया। और मन था कि पगलाए चला जाता है। मन की आंधी बढ़ती चली जाती, वहां धुआं इकट्ठा

मनो-विश्लेषण सब करवा लिया, कोई हल न पाया। और मन था कि पगलाए चला जाता है। मन की आंधी बढ़ती चली जाती, वहां धुआं इकट्ठा होता चला जाता और विक्षिप्तता करीब है।

तो उसने एक छोटा सा प्रयोग किया। वह कैसे उस प्रयोग पर पहुंचा, कहना मुश्किल है, लेकिन वह बहुत पुराना तांत्रिक प्रयोग है। वह प्रयोग यह है, कि वह अपने को इस तरह अनुभव करने लगा, जैसे सिर है ही नहीं। राह पर चलता है, लेकिन एक खयाल रखता है, कि सिर कटा हुआ है। बस, गर्दन तक हूं, उसके पार नहीं हूं। बैठता है, सोता है, लेकिन एक खयाल बनाए रखता है, है, सोता है, लेकिन एक खयाल बनाए रखता है, कि गर्दन है ही नहीं। धीरे-धीरे वह चकित हुआ, कि गर्दन न होने का खयाल; गर्दन कट गई, सिर के न होने का खयाल मन के विचारों को शांत करने लगा।

उसे तो कुंजी मिल गई। फिर तो उसने इसका गहन प्रयोग किया। उठते, बैठते, चलते, सोते वह एक ही मंत्र बना लिया उसने कि खोपड़ी नहीं है। बस, नीचे का धड़ है, सिर नहीं है। और कोई साल भर प्रयोग के बाद सारे विचार शून्य हो गए।

तो अब तो वह गुरु हो गया। तो वह लोगों को समझाता। और उसने एक छोटी सी तरकीब निकाली। वह साथ में, अपने झोले में कागज की थैलियां रखे रहता है। थैलियां, जो दोनों तरफ से खुली हैं; लम्बी थैलियां कागज की। वह लोगों को कहता है, इसमें सिर डाल लो। वहां कुछ है ही नहीं, खाली थैली है। और वहां देखते रहो और सोचते रहो, कि सिर है ही नहीं। न तो कुछ देखने को है, न कोई देखने वाला है।

और अनेक लोगों को ध्यान की थोड़ी-थोड़ी झलकें उसकी थैलियों से मिलनी शुरू हो गईं। वह थैली काम की है, कारगर है, तुम भी प्रयोग करके देखना। बस, थोड़ी सी कागज की थैली, उसमें खोपड़ी डाल ली। और वहां कुछ है नहीं, खाली थैली है; वहां देखते रहे, देखते रहे। न कुछ देखने को है, न कोई देखने वाला है।

बस, इतना ही सारा ध्यान का शास्त्र है, न कुछ देखने को है, न कोई देखने वाला है। न दृश्य है, न दर्शन है। फिर विचार कहां उठता है? फिर विचार खो जाता है।

लेकिन विचार का खो जाना पर्याप्त नहीं है। यही भक्तों में और ध्यानियों में फर्क है। ध्यानी कहता है, विचार खो गया, सब हो गया। भक्त कहता है, विचार खो गया, यह तो केवल प्राथमिक चरण है। अभी भाव कहां जन्मा है? तो विचार खो जाने के बाद तुम पाओगे विचार तो खो गया, मन शांत हो गया, लेकिन आनंद तुम न पाओगे।

इसलिए ध्यान करने वाला व्यक्ति शांत हो जाएगा, शून्य हो जाएगा। आनंद की स्फुरणा न पायेगा। यही फर्क है बुद्ध के विचार और वेदांत का। बुद्ध का विचार शून्य तक पहुंचा देता है। बड़ी गहरी बात है शून्य तक पहुंचा देना; आधी मंजिल पूरी हो गई।

लेकिन वेदान्त कहता है, यह काफी नहीं है। शून्य तो हो गया, लेकिन अभी परमात्मा से भरा नहीं। जहर से तो खाली हो गया पात्र, लेकिन अमृत अभी भरा नहीं। अच्छा हुआ कि जहर से खाली हो गया, काफी है यह भी। यह भी कितना मुश्किल है, लेकिन अधूरा है।

यही वेदान्त का और बुद्ध के चिंतन का फर्क है। वेदान्त कहता है, जब तक शून्य पात्र ब्रह्म से तो हो जाओगे, लेकिन आनंदित कैसे होओगे?

न भर जाए, तब तक तुम शांत तो हो जाओगे, लेकिन आनंदित कैसे होओगे?

इसलिए बुद्ध को तुम वृक्ष के नीचे शांत बैठा देखते हो। महावीर को तुम पहाड़ों में शांत खड़ा हुआ देखते हो; पर मीरा का नाच, चैतन्य का अहोभाव—दिखाई नहीं पड़ता। कुछ कमी है। कुछ चूक रहा है। सब है—बैण्ड-बाजे बज गए, बराती आ गए, मेहमान इकट्ठे हो गए, लेकिन दूल्हा खो रहा है। सब है, लेकिन कुछ फीका-फीका है। दरबार भरा है, दरबारी बैठे हैं, सिंहासन खाली है, सम्राट नहीं है। सन्नाटा है, प्रतीक्षा है लेकिन कुछ चूक रहा है—कोई एक कड़ी!

है, सम्राट नहीं है। सन्नाटा है, प्रतीक्षा है लेकिन कुछ चूक रहा है—कोई एक कड़ी!

वेदान्त परम शास्त्र है। उससे ऊपर शास्त्र कभी नहीं गया। वेदान्त परम दृष्टि है, क्योंकि वह शून्य में पूर्ण को उतार लेती है।

मैं भी तुमसे कहता हूं, कि ध्यान जरूरी है, एकदम जरूरी है। उसके बिना कुछ भी न होगा। वह तो प्राथमिक है। उससे तो भवन निर्मित होगा। लेकिन फिर भी अतिथि के आने की जरूरत पड़ेगी।

विचार अकेले मस्तिष्क से चल सकते हैं, उनके लिए तुम्हारे पूरे होने की जरूरत नहीं है। इसलिए जितना विचारक विचार में डूबता चला जाता है, उतना ही उसका जीवन संकीर्ण होता चला जाता है, छोटा होता चला जाता है

भूमि तैयार कर ली, बीज भी डालने पड़ेंगे। भूमि तैयार कर लेना बगीचे का लग जाना नहीं है। जब भाव उमगेगा, तभी बगीचा लगेगा। इसलिए जब तक तुम नाच न सको, तब तक समझना अभी मंजिल नहीं आई। शांत हो जाओगे; खूब! बहुत खूब! अच्छा हुआ। लेकिन जब तक नाच न पाओ, तब तक समझना अभी थोड़ा-सा फासला बाकी है।

बुद्ध खूब हैं, लेकिन कृष्ण के ओठों पर रखी बांसुरी की कमी है। थोड़ा सा चूक रहा है। हो सकता है बुद्ध के भीतर वह पूरा भी हो गया हो; लेकिन बुद्ध नाच नहीं सकते। उनकी सारी प्रक्रिया शून्यता की है, अहोभाव की नहीं। हो सकता है, भीतर वे आनंद को भी उपलब्ध हो गए हों, लेकिन वह आनंद उनके रोएं-रोएं से बहता नहीं। उसमें भी एक संयम मालूम पड़ता है। उसमें वे पागल होकर नाच नहीं उठते, बावले नहीं हो जाते।

खयाल रखना—विचार, निर्विचार, फिर भाव। विचार से मुक्त होना है, निर्विचार को लाना है, ताकि भाव आ सके। और जब भाव आ जाए तो संकोच मत करना और डरना मत; और भयभीत न होना और संयम मत रखना। फिर नाचना अबाध! तभी जीवन परम उत्सव को उपलब्ध होता है। और जीवन की आखिरी घड़ी अगर उत्सव न हो सके, तो कहीं कुछ कमी रह गई। थोड़ी सी रह गई हो, लेकिन कमी रह गई।

नाचते हुए तुम मृत्यु में जा सको तो ही आवागमन से छुटकारा है। तुम्हारा मंदिर तुम्हारा नृत्यगृह बन जाए और तुम्हारा ध्यान तुम्हारे भीतर अनाहत नाद को जगा दे। तुम्हारी विचार-शून्यता में ओंकार का विस्फोट हो। तुम शून्य बनो और पूर्ण का अतिथि तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे। इससे कम पर राजी मत होना।

धर्म अगर अंततः नृत्य और उत्सव न बन जाए तो धर्म पूरा नहीं है।

—ओशो

कहै कबीर दीवाना

प्रवचन नं. 14 से संकलित

(पूरा प्रवचन टेप पर उपलब्ध है)